शोध मंथन Vol. XIV No.II Apr.-June 2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.870 (SJIF)

स्त्रियों की स्थिति स्त्रियों की कलम से : मध्यकालीन भक्त साधिकाओं पर आधारित एक अध्ययन

प्राप्तिः 24.06.2023
स्वीकृतः 29.06.2023

डॉ० मन्जू देवी
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
सी०एम०के० नैशनल महाविद्यालय, सिरसा
ईमेलः *dr.md158@gmail.com*

49

सारांश

एक तरफ पुरुष वर्ग स्त्री को परपुरुष के विषय में सोचने पर धर्म का वास्ता देकर उनके लोक–परलोक खराब होजाने की बात करता था दूसरी तरफ स्वयं ही स्त्रियों पर कुदृष्टि डालता था। एक तरफ अपनी जरूरत के लिएजीवन संगिनी के रूप में गृहस्थ में उनकी जरूरत (क्योंकि हिन्दू धर्म के अनुसार पत्नी के बिना पति का कोई भी गृहस्थ कार्य अधूरा है) को समझता था, घर को चलाने में उसकी मदद लेता था, बच्चों को पालने के लिए उसे माँका दर्जा भी दिया जाता था, माता–पिता की सेवा के लिए उसे बहू का दर्जा दिया जाता था, परन्तु यह सब उसकेपरिवार को, उसके अपने जीवन को सँवारने के लिए था। इन सबके बावजूद उसने स्त्री को सदा अपने से हीन स्थिति में दर्शाने का प्रयत्न किया। परन्तु यदि स्त्रियों की वास्तविक स्थिति को, उसके अन्य पारिवारिक रिश्तों केसाथ संबंधों को समझना है तो इसमें भक्त साधिकाओं की रचनाओं पर आधारित यह शोध–पत्र एक मील का पत्थर साबित हो सकता है जो हमें स्त्री साधिकाओं की जुबानी उनकी स्थिति की सही जानकारी देता है।

मुख्य बिन्दु

भक्ति–आंदोलन, भक्त–साधिकाएं, सम्प्रदाय, सूफी, फारसी इतिहास लेखन, संतमतों, ऋषिमुनि, रचनाकार, लिंग भेद।

प्रस्तावना

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की स्थिति को दर्शाने का प्रयत्न तो बहुत बार किया गया है परन्तु यह वह स्थिति हैजो पुरुषों ने अपनी सोच के अनुसार निर्धारित की।'[1] लेकिन वास्तव में एक स्त्री अपने पारिवारिक सम्बन्धों, अपनेरिश्तों के विषय में क्या सोचती थी? उसकी एक सटीक जानकारी हमारे पास नहीं है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास क्योंकि फारसी इतिहास लेखन है, जिसमें उच्च वर्गों का ही वर्णन प्राप्त होता है, इसलिए एक आम स्त्री कीपारिवारिक स्थिति, उसके अन्य रिश्तों के साथ सम्बन्धों का वर्णन प्राप्त नहीं होता। इस कमी को पूरा करने के लिए मध्यकालीन भक्त साधिकाओं की रचनाओं को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध–पत्र में उनकी जबानी उनकी स्थिति को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। गहन शोध के पश्चात यह नवीन प्रयास करने का प्रयत्न किया गया है, जिसमें हम

स्त्रियों की स्थिति को पुरुषों की सोच के अनुसार नहीं, बल्कि स्त्रियों के वास्तविक हालात के माध्यम से जानने का प्रयत्न करेंगे। इसी के साथ–साथ जहाँ तक सम्भव हो सकेगा, पुरुषों की स्त्रियों के प्रति सोच को भी दर्शाने काप्रयत्न करेंगें।

उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन के विकास के परिणामस्वरूप अनेक संतों एवं मतों का उदय हुआ जिन्होंने बिना किसी भेदभाव के सभी को भक्ति में आने का अवसर प्रदान किया। वल्लभाचार्य व विट्ठलनाथ जैसे संतों ने नकेवल हर जाति के लोगों को बल्कि मुस्लिम भक्तों को भी अपने सम्प्रदाय में शामिल किया। उनके लिए मुस्लिम अलग नहीं थे बल्कि वे भी वैष्णव ही कहलाते थे।[2] पौराणिक आख्यानों व संतों की वाणी सुनकर इन परिस्थितियों में स्त्रियाँ भी अपनी पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं से ऊपर उठकर स्वयं को भक्ति की ओर आकर्षित कर पाई। इसके अतिरिक्त कुछ और साधिकाएँ भी अपनी अलग–अलग परिस्थितियों व कारणों से (जिनका वर्णन जगहकी कमी के कारण यहाँ नहीं किया जा सकता) भक्ति की ओर आकर्षित हुई। इन साधिकाओ में आण्डाल[3] (716 ई० में तमिल प्रान्त में); मुक्ताबाई[4] (1271 ई० में महाराष्ट्र के आलदी गाँव में); ललद्यद[5] (335 ई० में श्रीनगर के पांपोर के निकट सिमपुरा गाँव में); मीराबाई[6] (1498 ई० में मेड़ता जिले के कुदकी गाँव में); ताज[7] (1643 ई० में पंजाब के करौली गाँव में); चन्द्रसखी[8] (1643 ई० में राजस्थान के ओड़छा में); सहजोबाई[9] (1743 ई० में मेवात केढूसर कुल में); दयाबाई[10] (18वीं सदी में मेवात के ढूसर कुल में) आदि प्रमुख हैं।

भारतीय नारी का क्षेत्र कठोर रूप से घर की चारदीवारी तक ही सीमित था। पति को प्रसन्न रखना व स्वयं को पतिव्रता सिद्ध करने तक ही उसके समस्त विचार होने की आशा की जाती थी। इस पर भी स्त्री को पुरुष को पथभ्रष्ट करने वाला बताया गया है[11] जिससे हमेशा दूरी रखनी चाहिए। सर अहमद सरहिन्दी जैसे सूफी ने भीस्त्रियों के लिए कुछ ऐसे ही विचार दिए हैं। उसने घोषणा की कि खुदा ने मर्द पर मेहरबानी की है, इसलिए उसेचार शादियाँ करने का अधिकार प्राप्त है। वह तलाक द्वारा स्त्रियाँ बदल सकता है और कितनी ही रखैलें रखसकता है। स्त्री इतनी दुष्ट प्रकृति की होती है कि व्याभिचार के हर मामले में प्रमुख रूप से उसी को दोशी मानना चाहिए।[12] ऐसा करते हुए शायद वे सृष्टि संरचना व पारिवारिक संरचना के सिद्धान्त को नकार देते हैं। परस्त्री से सम्बन्ध रखने पर पुरुष के लिए नरक भोगने व तिरस्कृत जीवन व्यतीत करने की सजा नहीं मानी गई जबकि परपुरुष से सम्बन्ध रखने पर स्त्री के लिए धर्म का सहारा लेते हुए जीते जी तिरस्कृत जीवन व मरने केबाद नरक के रास्ते दिखाए गए।[13]

मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन के आने से स्त्रियों के समक्ष एक नया मार्ग खुला। वे अपनी सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं से ऊपर उठकर ईश्वर को अर्पित होने में स्वयं को केन्द्रित कर पायीं।[14] भक्त साधिकाएँ इस ऐतिहासिक अध्याय का एक ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि साधिकाओं के उदय से पहले स्त्री की स्थिति के बारे में जो कुछ भी लिखा गया, उसे लिखने वाले पुरुष ही थे, चाहे वे हमारे ऋषि–मुनि हों या भक्त संत। यद्यपि स्त्री उनकी रचनाओं (जैसे वाल्मिकी, वेदव्यास, तुलसीदास, कबीर आदि) में संवेदना, सहानुभूति सब कुछ प्राप्त करती है परन्तु अंततः शास्त्रानुमोदित नियमों–मर्यादाओं की सीमा में बांध दी गयी। उस सामाजिक संरचना का पुरुषों द्वारा ही समर्थन किया गया है जिसमें स्त्री के लिए मुक्ति की बात को स्वीकार नहीं

किया गया है।[15] इस समय स्त्रियाँ किस माहौल में रह रही थीं? अगर इस बात का थोड़ा सा भी एहसास पुरुषों को होता तो शायद उनका स्त्री संबंधी दृष्टिकोण अलग होता। पुरुष स्त्री के दुख–दर्द एवं उसकी परेशानियों का दर्शक मात्र था। वह अनुभवकर्ता नहीं था। वहअनुभव करता भी क्यों? क्योंकि उसे तो इन समस्त परेशानियों का सामना ही नहीं करना पड़ रहा था। पहली बार भक्त साधिकाओं ने जो रचनाकार ही नहीं, बल्कि भोक्ता भी हैं, अपने भोगे हुए को, सहन किए हुए को अपने शब्द दिए।

साधिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्त्री से संबंधित अनेक विषयों का उल्लेख किया है, जैसे परिवार में लड़की की स्थिति, पति की तुलना में पत्नी की निम्न स्थिति, ससुराल में सास–ननद की कलह व उनके द्वारा दी जाने वाली यातनाएँ, स्त्रियों पर लगे हुए प्रतिबन्ध इत्यादि।[16] स्त्रियों से संबंधित ये कुछ ऐसे विषय है जिनकी अनुभूति केवल एक स्त्री ही कर सकती है। साधिकाओं ने जो स्वयं स्त्रियाँ थी, इन सब बातों को अनुभव किया और अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने निजी एवं पारिवारिक जीवन को सार्वजनिक तौर पर अभिव्यक्ति प्रदान की।

भक्त साधिकाओं ने अपनी रचनाओं में माँ, पत्नी, पुत्री आदि विभिन्न रूपों में स्त्रियों की स्थिति एवं उनके कार्यों का उल्लेख किया है। यदि लड़की के जन्म से ही उसकी स्थिति की बात की जाए तो परिवार में लड़की की बजाय लड़के का अधिक महत्व था क्योंकि पुत्र उनकी स्थायी सम्पत्ति था तथा उनके वंश को चलाता था। चन्द्रसखी कहती है कि जिस प्रकार दीपक के बिना महल में अंधेरा रहता है उसी प्रकार पुत्र के बिना परिवार का कोई महत्व नहीं होता। पुत्र के बिना परिवार में स्त्री को सम्मान प्राप्त नहीं होता था।[17] इसी प्रकार ललद्यद कहती है कि ईश्वर ने किसी को तो गुलेलाला (अर्थात पुत्र ही पुत्र) दिए और कुछ के गले ब्रह्म हत्याएँ (पुत्रियाँ ही पुत्रियाँ) मंढ़ दी।[18] पुत्रीके लिए ब्रह्म हत्या शब्द उसकी लाचारी को व्यक्त करता है और माताएँ गुलेलाला अर्थात पुत्र के लिए तरसती रहती थी क्योंकि परिवार में पुत्र न होने पर उन्हें ताने दिए जाते थे। हम समझ सकते हैं कि एक स्त्री जो माँ भी है, जब अपनी पुत्री के लिए ब्रह्म हत्याएँ शब्द प्रयोग करती तो वह किस हद तक इस विषय में ताने सुनती होगी। यह परिवार में एक स्त्री की दर्दनाक स्थिति का वर्णन करने के लिए पर्याप्त है।

विवाह के पश्चात् स्त्री को पति के घर में पिता के घर जैसी स्वतन्त्रता नहीं मिल पाती थी। पति–पत्नी के सम्बन्धों के बारे में साधिकाएँ बताती है कि पति की सेवा करना व पतिधर्म का पालन करना पत्नी का कर्त्तव्य समझा जाताथा।[19] स्वयं को अबला कहकर साधिकाओं ने स्पष्ट किया है कि पति की तुलना मे पत्नी की स्थिति बहुत निम्न थी। उन्होंने तो अपनी लाचारी व्यक्त करते हुए कहा कि मेरा पति मुझे जैसा रखेगा, मैं वैसा ही रहूँगी। यदि वह मुझे बेचना भी चाहेगा तो उसके लिए भी तैयार हो जाऊँगी।[20] पत्नी के लिए पति तक ही सीमित रहना अनिवार्य था। उसका पति चाहे कोढ़ी, कुष्ठी ही क्यों न हो। परपुरुष के विषय में सोचना भी उनके लिए कष्टदायक हो सकता था।[21] पति–पत्नी के सम्बन्धों के बारे में बताते हुए ललद्यद कहती है कि कुछ की पत्नियाँ कुतिया के समान होती है अर्थात् उनका घर में कोई मान–सम्मान एवं महत्व नहीं होता।[22] साधिकाएँ बताती हैं कि पत्नी चाहे कितनी भी कर्त्तव्यपरायण क्यों न होती, पति फिर भी उस पर प्रतिबन्ध लगाकर रखता था।[23] परन्तु ऐसा नहीं था कि सभी स्त्रियों का दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं था। उन्होंने पति–पत्नी के प्रेम संबंधों का भी वर्णन किया है। इन प्रेमपूर्ण संबंधों के बावजूद पुष्टि होती है कि पुरुष अपनी पत्नी तक ही सीमित नहीं रहते थे बल्कि उनके

संबंध दूसरी स्त्रियों के साथ भी होते थे। पतिव्रता स्त्री इस बात पर चुप ना बैठकर एक प्रकार का सिकवा करती थी परन्तु ऐसी स्थिति हमेशा परिवार में पारिवारिक कलह को जन्म देती थी।[24]

पुरूषों द्वारा प्राप्त वर्णन में केवल गृहस्थ जीवन में स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक दिखाई देती है जहाँ उसका चित्रण पुरुष की जीवन संगिनी व गृहस्थ जीवन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में हुआ है। परिवार का कोई भी संस्कार उसके बिना पूर्ण नहीं होता था।[25] एक तरफ पति–पत्नी को एक दूसरे का पूरक माना गया पर ऐसा करते हुए भी परिवार में पत्नी के लिए निम्न दर्जा स्वीकार किया गया व पत्नी का कर्त्तव्य समझा गया कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा से पति की सेवा करे।[26] इन्हीं पति–पत्नी के सम्बन्धों का वर्णन जब हम साधिकाओं की रचनाओं में देखते हैं तो ज्ञात होता है कि वास्तविकता कुछ और ही थी।

एक लड़की से पत्नी व पत्नी से ससुराल में जब हम उसे बहू के रूप सास–ननद का साथ निभाते देखते हैं, तो साधिकाओं ने एक स्त्री के रूप में अपनी दशा का बहुत ही मार्मिक रूप प्रस्तुत किया है।

यदि कोई स्त्री ससुराल में अपनी सास को संतुष्ट करने में असफल रहती तो उसका जीवन बहुत कष्टमय होता था। उसे परिवार के सभी सदस्यों को खुश रखना पड़ता था तथा घर के सभी कार्य भी करने होते थे। बहू के ऊपर सास–ननद का डर हमेशा बना रहता था। किसी भी कार्य में देरी होने पर उन्हें सास–ननद के ताने सहन करने पड़ते थे।[27] ससुराल में स्त्रियों को सास–ननद के अतिरिक्त पड़ोस की स्त्रियों का डर भी बना रहता था क्योंकि वे भी उन्हें गालियाँ देती थी। साधिकाओं ने न केवल अपने पारिवारिक रिश्तों पर बोलने, लिखने की हिम्मत की बल्कि वे बताती हैं कि पास–पड़ोस की स्त्रियाँ भी उन्हें जीने नहीं देती व आपस में एक–दूसरे के घर की बहुओं की चर्चा–चुगली करती थी। साधिकाएँ कहती हैं कि इस ब्रज में कोई नहीं रह सकता क्योंकि यहाँ परस्त्रियाँ पानी में आग लगाती हैं अर्थात् एक दूसरे के घरों में क्लेश उत्पन्न करती हैं।[28]

साधिकाओं द्वारा दिए गए इन साक्ष्यों से यह बात स्पष्ट होती है कि इस तरह के उल्लेख उन्होंने इसलिए दिए हैं क्योंकि उन्होंने भी कहीं न कहीं इस तरह की पारिवारिक यातनाएँ सहन की होंगी। खुलकर तो वे अपनी बात नहीं कह सकती थी इसलिए अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने अपने निजी जीवन को सार्वजनिक अभिव्यक्ति प्रदान की। ललद्यद बताती है कि उसकी सास उससे घर का सारा काम लेती थी तथा उसे खाने के लिए पेटभर भोजन भी नहीं देती थी। भोजन की मात्रा अधिक दिखाई दे, इसके लिए वह थाली में एक पत्थर रखकर उस पर भात कालेप कर देती थी। एक दिन पनघट पर ललद्यद की सहेलियों ने उससे पूछा कि आज तो तुम्हारे घर में तरह–तरह के पकवान बने हैं, इसलिए आज तो तुझे बहुत से स्वादिष्ट व्यंजन खाने को मिलेंगे। इस पर ललद्यद ने कहा कि घर में चाहे बकरा कटे या भेड़! मेरे भाग्य में तो पत्थर ही लिखे हैं।[29] इतना ही नहीं सास–ननद बहू के ऊपर झूठे आरोप भी लगाती थी और उसे चोरटी कहकर चिढ़ाती थी। तरह–तरह के ताने देती थी तथा बहू मन ही मन रोती थी।[30] ससुराल में एक स्त्री को कितना दुःखी किया जाता था इसकी पुष्टि भी साधिकाओं ने ही की है और अपने परिवार वालों को कहती हैं कि मुझे ससुराल में बहुत दुःखी किया जा रहा है तथा कोई मेरे पिता से कह दो कि वे मुझे यहाँ से ले जाएँ।[31]

घर ही नहीं उनका घर से बाहर निकलना भी अच्छा नहीं माना जाता था। अगर स्त्रियाँ घर

से बाहर जाती तो घूँघट में होती थी क्योंकि मध्यकाल में स्त्री के निजी एवं सार्वजनिक परिवेश की सीमाओं को घूँघट ही तय करता था। उसकी लोकलाज की परिभाषा भी इसी से तय होती थी। इस पर भी साधिकाएँ बताती हैं कि जब स्त्रियाँ घूँघट में पानी भरने जाती थी तो भी दूसरे पुरुष उन्हें घूरते रहते थे और उन पर कुदृष्टि डालते थे।[32]

संदर्भ

1. हबीब, इरफान. (2002). भारतीय इतिहास में मध्यकाल. सं० अनु० रावत, रमेश. ग्रन्थ शिल्पीः दिल्ली।
2. गोकुलनाथ. (2003). चौरासी व दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, बिन्दू मट्टू, न्यू होराई जन्स (ए सोशियो–इकॉनोकिमस्टडी ऑफ द सिक्सटीन्थ सैन्च्युरी इण्डिया)ः नई दिल्ली. पृष्ठ **62–63.**
3. निवासन, राघवन. (1975). दिव्य प्रबन्ध (आलवार प्रणीतपद संचयन). विश्व भारती शान्ति निकेतनः प० बंगाल. पृष्ठ **116.**
4. सिंह, भगवती प्रसाद. (सं०). (1989). राधा कृष्ण भक्त कोष. भाग–3. संत शास्त्रा प्रकाशनः मथुरा. पृष्ठ **271.**
5. रैणा, शिबन कृष्ण. (1977). कश्मीरी लल्दयद. भुवनवाणी ट्रस्टः लखनऊ. पृष्ठ **9.**
6. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. (1983). राजपूताने का इतिहास. वैदिक यंत्रालयः अजमेर. वि० सं०. पृष्ठ **355.**
7. मुंशी, देवी प्रसाद. (1904). महिला मृदुवाणी. तारा प्रेसः बनारस. पृष्ठ **31.**
8. मित्तल, प्रभुदयाल. (1963). चन्द्रसखी का जीवन और साहित्य. साहित्य संस्थानः मथुरा. पृष्ठ **33.**
9. सहजोबाई. (1937). सहजोबाई की बाणी. वेलवेडियर प्रेसः प्रयाग. पृष्ठ **4.**
10. दयाबाई. (1929). दयाबाई की बाणी. वेलवेडियर प्रेसः प्रयाग. भूंमिका से उद्धृत।
11. केशवदास. (1959). विज्ञानगीता. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्रा. इलाहाबाद. 16/43.
12. सरहिन्दी, शेख अहमद. मक्तूबाते–इमाम–ए–रब्बानी. भाग 1 व 3. पत्र संख्या 192 व 41. लखनऊ. पृष्ठ **190. 91 व 70.** हबीब, इरफान. भारतीय इतिहास में मध्यकाल. पृष्ठ **35 व 70.**
13. सूरदास. (1974). सूरसागर. अनु० व सं० हरदेव बाहरी व राजेन्द्र कुमार. इलाहाबाद. 10/1014, 1017.
14. भट्ट, बिन्दू. नारी मुक्ति के नए आयाम–एक अध्ययन (ललद्यद के संदर्भ में). शोधक– ए जर्नल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च. पृष्ठ **135.**
15. चतुर्वेदी, जगदीश्वर. (2000). स्त्रीवादी साहित्य विमर्श. दिल्ली. पृष्ठ **19.**
16. मित्तल, प्रभुदयाल. (1963). चन्द्रसखी का जीवन और साहित्य. साहित्य संस्थानः मथुरा. पृष्ठ **116,121,141;** चतुर्वेदी, बरसाने लाल. (1965). मीराँ पदावली. साहित्य संगमः मथुरा. पृष्ठ **120.**

17. उपरोक्त. पृष्ठ **138.**
18. (1977). कश्मीरी लल्दयद. पृष्ठ **102,98.**
19. चन्द्रसखी का जीवन और साहित्य. पृष्ठ **15.**
20. शर्मा, कृष्णदेव. (1972). मीराँबाई पदावली. रीगल बुक डिपोः नई दिल्ली. पृष्ठ **187.**
21. उपरोक्त. पृष्ठ **194.**
    छैल बिराणो लाख को हे, अपने काज न होय।
    ताकेसंग सिधारता, भला न कहसी कोय।
    वर हीणो अपणो ही भलो, कोढ़ी कुश्ठी कोय।
22. कश्मीरी लल्दयद. पृष्ठ **97.**
23. उपरोक्त. पृष्ठ **102.**
24. चन्द्रसखी का जीवन और साहित्य. पृष्ठ **106.**
25. फजल, अबुल. (1989). आईन–ए–अकबरी. अनु० एच० ब्लाकमैन. भाग 3. नई दिल्ली. पृष्ठ **297–98;** सूरसागर 10/811. विज्ञानगीता 16/40.
26. विज्ञानगीता. 16/40.
27. चन्द्रसखी का जीवन और साहित्य. पृष्ठ **99.**
28. उपरोक्त. पृष्ठ **104.**
29. कश्मीरी लल्दयद. पृष्ठ **14.**
30. चन्द्रसखी का जीवन और साहित्य. पृष्ठ **141.**
31. चतुर्वेदी. मीराँ पदावली. पृष्ठ **126.**
32. उपरोक्त. पृष्ठ **48.**